पंचम अध्याय

" कलागत विशेषताएँ "

(अ) भाषा शैली ।

(आ) कथोपकथन की समीक्षा ।

पंचम अध्याय

" कलागत विशेषताएँ "

मानव जीवन को अभिव्यक्ति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए उपन्यासकार कुछ निश्चित विधियों का अवलम्बन करता है और इन की सहायता से अपनी रचना में मानव जीवन का सजीव चित्र खड़ा करता है । यह विधियाँ ही उपन्यास की शैली या विधि के नाम से पुकारी जाती हैं । यदि हम उपन्यासकार की कला का विश्लेषण करें तो हमें पता चलेगा कि इसके अन्तर्गत यह तत्व आते हैं - कथावस्तु, चरित्र - चित्रण, देशकाल, कथोपकथन, उद्देश्य और भाषा शैली । कथावस्तु और चरित्र चित्रण का विश्लेषण हम पिछले दो अध्यायों में कर चुके हैं । भाषा शैली और कथोपकथन की समीक्षा हम प्रस्तुत अध्याय में करेंगे और देश काल एवं उद्देश्य का अध्ययन हम यथा स्थान करेंगे ।

शिल्प की दृष्टि से खंजन नयन नागर जी का सफल हुआ उपन्यास है, प्रस्तुत उपन्यास में महाकवि सूरदास के जीवन वृत को सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है । इतिहास, धर्म, विभिन्न सम्प्रदाय और संस्कृति का समन्वय इस उपन्यास की विशेषता है । उपन्यास में कवि की जीवनी रोमानी कल्पना तथा कुछ किम्वदंतियों के आधार पर निर्मित है जिस में सूरदास

रचित कृतियों से कुछ उदाहरण लेकर उनके आधार पर तथ्य निरूपण करने का सफल प्रयास है। प्रस्तुत उपन्यास 'खंजन नयन' में नागर जी ने कथा प्रसंगों की कुछ ऐसी रचना की है कि सम्पूर्ण उपन्यास ही मार्मिक हो गया है। प्रत्येक प्रसंग और प्रत्येक घटना अपना स्वयं भी महत्व रखती है। समग्र घटना चक्र परस्पर सम्बन्ध और साभिप्राय है। नागर जी का कलाकार मन इस उपन्यास में रम गया है। उपन्यास इतिहास नहीं अतः अन्य पुरुष की प्रविधि में लिखने के कारण उसमें नाटकीयता नहीं रहती। इसलिए उपन्यासकार ने यह उचित समझा कि पाठक स्वयं सूरदास या उसके समकालीन पात्रों के माध्यम से कथा सुने और यदा कदा युग की स्मृति में नाटकीय रूप में प्रत्यक्ष हो गये अतीत के दृश्यों को अपनी आँखों से देखे। नागर जी ने बड़ी कुशलता से कुछ और पात्रों को भी सूरदास के साथ जोड़ दिया है जैसे - भोला पद्दन पण्डित, मल्ल मार्तण्ड सूफी फकीर दिल खुश शाह आदि। जिन के कारण नागर जी ने अपने विषय को सर्वाधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने की सफलता प्राप्त की है।

(अ) भाषा शैली :-

भाषा ऐसे शब्द - समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरों के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है। भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिए। अर्थात् किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। किन्तु जब हम किसी लेखक या कवि की भाषा का विचार करते हैं तो उस समय शब्द योजना आदि का ही विचार नहीं अपितु उन शब्दों के माध्यम से भाव - सौन्दर्य का आकलन करना

इसी भाव सौन्दर्य के सम्बन्धित रस परिपाक की प्रक्रिया भी आती है । वस्तुतः भाषा का रस परिपाक में सर्वाधिक योग रहता है । फिर भी इसके साथ ही विभिन्न मनोभावों के प्रकटीकरण की तीव्रता से भी भाषा का सम्बन्ध गहरा है । काव्य शास्त्र में श्रृंगार, रूद्र, वीर आदि रसों के लिए भिन्न शब्द योजना पर बल दिया गया है । श्रृंगार आदि के लिए कोमल कान्त पदावली तथा वर्ण विहीन शब्दावली का प्रयोग बताया गया है । वर्ण्य मैत्री एवं शब्द शक्ति के द्वारा भी किसी लेखक की भाषा का औचित्य जाँचा जा सकता है । किसी भी उपन्यासकार की भाषा के सम्बन्ध में इन सभी भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों का विचार करना आवश्यक है, तब ही हम उसके भाषा सौष्ठव को पूर्ण रूप से हृदयंगम कर सकेंगे ।

अन्य तथ्य जो भाषा शैली की समीक्षा करने में सहायक सिद्ध होते हैं उनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार उपन्यासकी प्रकृति का भी आसानी से तिरस्कार नहीं किया जा सकता अर्थात् कहीं पर कुछ ऐसे विशेषण उपन्यासों के साथ जोड़ दिये जाते हैं जो कि उस उपन्यास की मुख्य विशेषता पर आधारित होते हैं । यह काम आलोचकों का होता है जो कि किसी उपन्यास के साथ विशेषण जोड़ दिया या कभी स्वयं उपन्यासकार ही अपने उपन्यास की प्रकृति के बारे में लिखता है । जैसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में ही लिखा था कि यह उपन्यास एक अंचल विशेष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परा को लिए हुए चल रहा है, अतः यह एक आंचलिक उपन्यास है । आज तक यह सिद्ध नहीं हुआ है कि कोई उपन्यास है तो क्या उस के लिए उस अंचल विशेष की भाषा अथवा बोली का समावेश होना आवश्यक है या नहीं । उपन्यास की आंचलिकता को बचाये रखने के लिए यद्यपि उस अंचल विशेष की भाषा बोली का होना आवश्यक है तथापि आंचलिकता

एवं पात्रों में स्वाभाविकता लाने के लिए इस अंचल विशेष की भाषा या बोली का होना थोड़ा सा आवश्यक बन जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास 'खंजन नयन' में भी यही समस्या उत्पन्न होती है । यद्यपि यह उपन्यास आंचलिक नहीं कहा जा सकता है (और वास्तव में है भी नहीं) लेकिन भाषा किसी हद तक एक अंचल विशेष की भाषा हो है । भाषा के सम्बन्ध में इस उपन्यास पर भी वही तथ्य लागू होते हैं जो कि एक आंचलिक उपन्यास पर लागू होते हैं । सूरदास जैसे पात्र में स्वाभाविकता लाने के लिए नागर जी ने ब्रज भाषा का खुलम खुला प्रयोग किया है - 'ऐसा नहीं है कि उन्होंने केवल ब्रज भाषा का ही प्रयोग किया हो - उन्होंने अवधि खड़ी बोली आदि का प्रयोग भी किया है लेकिन ब्रज भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । अतः हमें यहाँ यह देखना आवश्यक है कि नागर जी के भाषा सम्बन्धी प्रयोग कथानक एवं कथावस्तु में बाधक सिद्ध होते हैं अथवा नहीं । कथा एक अंचल विशेष की नहीं है और भाषा भी किसी एक अंचल विशेष की नहीं है । सांस्कृतिक परम्पराएँ, सामाजिक परम्पराएँ एवं आदर्श सभी देश भर के हैं ।

दूसरी बात यह है कि मुख्यतः भाषा तीन प्रकार का प्रयोग में लाई जाती है जैसे - (१) तत्सम प्रधान भाषा, (२) तद्भव प्रधान भाषा एवं (३) मिश्रित भाषा उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर अब प्रस्तुत उपन्यास की भाषा शैली की समीक्षा निम्न आधारों पर की जा सकती है -

१- उपन्यास की प्रकृति से सम्बन्धित भाषा शैली :- उपन्यास 'खंजन नयन' की भूमिका में स्वयं अमृतलाल जी नागर कहते हैं, - 'मैं भी यह मान लेना ठीक समझता हूँ कि ऐतिहासिक उपन्यास को विशुद्ध इतिहास मान लेना ठीक नहीं । उपन्यास ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक - अनैतिक, भले ही किसी

भी विशेषण युक्त हो वस्तुतः वह उपन्यास ही होता है, केवल उपन्यास । यह दूसरी बात है कि किसी ऐतिहासिक काल विशेष के चरित्रों का चित्रण करते समय लेखक उस काल की प्रमुख घटनाओं और नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं को भी चरित्रों के मनोनिर्माण में आवश्यक मान कर उन्हें समाहित कर लेता है ।'[1]

नागर जी शायद यह कहना भूल गये हैं या उन्होंने कहने की आवश्यकता नहीं समझी होगी कि भाषा भी कभी कभी पात्रों के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है । सूरदास जैसे पात्र से 'फिलासफी' शब्द का प्रयोग करवा के नागर जी उस सूरदास जैसे पात्र का निर्माण नहीं कर पाते जिस से कि वह अपने युग का प्रतिनिधित्व कर सके । 'खंजन नयन' एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इस की भाषा भी उस ऐतिहासिक काल विशेष से बहुत कुछ मेल खाती है जो कि उस समय की बोलचाल की भाषा थी । ब्रज आदि भाषाओं के शब्दों, वाक्यांशों, मुहावरों एवं कहावतों और लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है । यथा -

'कई दिन से मेरे पीछे पड़ी है निगोड़ी । मैंने बातें कह देना है कि मैं दूसरोन जैसो नाय । एक दिना वाको हाड़ पंजर अपनी लाठी से तोड़ दूँगा । जिनाए दऊँ हूँ पैले से, फिर मता कहियो कि चितायो नाय ।'[2]

और - 'प्यादोन रासे भर आता गहिमा मण्डित रहा, बीच बीच में टोप के बंद की तरह अपनी जवानी का दम भरते हुए यह भी कहता रहा कि जब राम नाम लेने को उमर आयेगा तब जप लेंगे ।'[3]

और 'बात जा में गढ़ गई, हाथ जोड़ कर कहने वाले से कहा : 'बड़ी अच्छी बात कही है आपने । इसे आगे छटे अंगुल से सदैव नापता रहूँगा ।'[4]

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 1
2- - वही - पृ0- 108
3- - वही पृ0- 136
4- - वही - पृ0- 112

नागर जी भाषा के पारखी हैं। उनका हिन्दी गद्य की अभिव्यंजना शैली में अपूर्व योगदान है। हिन्दी गद्य में - कई दृष्टियों से उन्होंने नवीन प्रयोग किए हैं। कालिदास की उपमाएँ अनूठी और अपूर्व हैं। कबीर और नज़ीर अकबराबादी की उपमाएँ नित्य प्रति के जीवन से ग्रहण की गई हैं और इस कारण उनमें सदैव जीवन्तता रहती हैं, वे हृदय को स्पर्श करती हैं। नागर जी की उपमाओं में उक्त तीनों विश्व प्रसिद्ध साहित्यकारों का अपूर्व संयोग दिखलाई देता है। नागर जी उपमाएँ नित नवेली और नई ब्याहुली जैसी लाजवन्ती होने के कारण सौन्दर्य मयी है। यथा -

'कम्मो खिल खिला कर हँस पड़ी। मदनध्वज सी लहराती उसकी हँसी में सूरज के मन में दाद की खुजली जैसी रति गुदगुदी मचाई पर वह उसे नकार गया।'[1]

और - "मन फिर उलझा - अर्थात् गुड़ खायें पर गुल गुलों से परहेज़ करें।'[2]

"यह पानी के ऊपर तैरते तेल सा कुछ नहीं था श्याम। उपकार के रूप में थोड़े से पानी की मिलावट भी थी।'-[3]

वार्तालापों के दौरान नागर जी ने ब्रज भाषा का बहुत ही अच्छा प्रयोग किया है और सूरदास भोला नाथ जैसे पात्रों में स्वाभाविकता ला सके हैं। उदाहरणार्थ :-

'सिष न विष। अरे प्रेम बड़ो सिद्ध मंतर है। हमारे कछु दोषण के कारण हमारे पिता भाई, क्रुद्ध हैं सो घर से निकाल दियौ है। बाट की कोठरी खाली खी तो यामें मैं आय गयौ। नागराज हूँ - और मैं तुम्हारा सौं, वा बखत इत्तो थको हतो भगत जा कि कुछ पूछो मती। मैंने हाथ जोड़ के कही कि नाग देवता आज कल पूर्नो की रोटियाँ खाऊँ हूँ या सर्ग मेरो काया हू जते जो मुर्ग है रहो है।'[4]

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 70
2- - वही - पृ0- 71
3- - वही - पृ0- 29
4- वही - पृ0- 22

ऐसा करने से सूरदास तथा अन्य पात्रों के निर्माण में स्वाभाविकता का अंश तो आया है लेकिन कुछ परिवेश गत एवं अंचल गत जटिलताओं के कारण एक साधारण पाठक को कुछ कठिनाइयाँ अनुभव होती हैं । इस प्रकार से पाठक एक प्रकार की दुरूहता का शिकार होता है । यद्यपि मुख्य कथा एक अंचल विशेष से ही जुड़ी हुई है तथापि यह एक आंचलिक उपन्यास नहीं है । इस में सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परायें तथा आदर्श देश भर के हैं । इस में यह दिखाया गया है कि सूर देश भर की धार्मिक, दार्शनिक, एवं साहित्यिक परम्पराओं की अनेकता में एकता का प्रतीक है । अतएव इस उपन्यास में प्रकृति से सम्बन्धित भाषा का प्रयोग किया गया है ।

१- तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग :-

प्रस्तुत उपन्यास 'खंजन नयन' में तत्सम प्रधान भाषा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है । जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि यह उपन्यास एक विशेष ऐतिहासिक काल के बारे में है । यह भारतीय इतिहास का वह काल है जब कि भारत में भक्ति का आन्दोलन चल रहा था । बहुत सारे सम्प्रदाय एवं वाद देखने को मिले । कुछ वाद एक दूसरे के परस्पर विरोधी एवं पूरक थे लेकिन कुछ वाद एवं सम्प्रदाय एक दूसरे के विचारों एवं संस्कारों से नफरत करते थे, इस ऐतिहासिकता का प्रभाव इस समय भी हमारे देश में है । सीधी मिसाल यह है कि शंकराचार्यत्व के चार हिस्से कर दिये गये हैं । कई राधास्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और कुछ कबीर आदि किसी दूसरे सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं । लेकिन लेखक ने इस उपन्यास में सूरदास को अनेकता में एकता का प्रतीक दिखाया है । सभी दर्शनों एवं संस्कारों का प्रभाव सूरदास पर दिखाया गया है, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं एवं आदर्शों का वर्णन करने

के लिए लेखक को तत्सम प्रधान शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है । जब - जब भी लेखक ने अपने मत का बखान किसी दार्शनिक के बारे में किया है तो उस समय उन्होंने अधिक तत्सम प्रधान भाषा का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है :-

"स्वामी हरिदास दौड़े आए इस वयोवृद्ध के चरण छूने के लिए झुके, स्वामी जी ने बीच ही में उन्हें उठा कर कलेजे से लगा कर कहा : " आत्मन् तुम्हारा रस साम्राज्य अखण्ड रहे । देखो मैं तुम्हें प्रेम सरोवर के एक कृष्ण कमल से परिचित कराने के हेतु से यहाँ आया हूँ ।"[1]

और - " कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि माता कुमाता न भवति "[2]

और- " जब जब देखो तेरा मुख तब तब नयो - नयो लागत । क्या यह तरंग ज्योति बिन्दु हो, 'निर्गुण निराकार, अनन्त अखण्ड अछेद्य, अभेद्य, एको हम् द्वितीयो नास्ति " परमब्रह्म है । जिसे शंकर स्वामी अद्वैत मानते हैं, उसी अद्वैत परब्रह्म को रामानुज महाराज चित, अचित और ईश्वरत्व की विशिष्टता में सगुण साकार लक्ष्मी नारायण के रूप में देखते हैं ।"[3]

इत्यादि उद्धरणों में तत्सम प्रधान भाषा का परिचय मिलता है ।

3- तद्भव प्रधान भाषा का प्रयोग :-

इस उपन्यास में कहानी एक महत्वपूर्ण पात्र सूरदास को लेकर लिखी गई है । सूरदास हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय एक भक्त कवि होने के साथ साथ ब्रज भाषा भाषी थे , उसी क्षेत्र में पैदा हुए थे और उसी क्षेत्र में उन्होंने अपनी काव्य रचना की । अतएव उनके सारे काव्य में ब्रज भाषा का ही प्रयोग हुआ है । वे अधिकांशतः अपना सारा साहित्य इसी भाषा में लिख चुके हैं ।

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 105

2- - वही - पृ0- 86

3- - वही - पृ0- 87

4- - वही -

सूरदास और अन्य पात्रों में स्वाभाविकता लाने के लिए तद्भव प्रधान भाषा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। जैसे - 'अरे हम पंच क्या अपनो उमिर गिनते हैं । ई जान लेव कि दस इगारा बरिस के रहे तब घर छूटा । हमारे बरोबर हो लगते हो आप भी । हम सादत तुमसे दो चार बरिस बड़े हो होंगे । बाकी यह बताओ महाराज कि हमारो कभी घर- गिरस्तो बाल - बच्चे भी होंगे कि नहीं ।"[1] इत्यादि उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि तद्भव प्रधान भाषा का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है ।

4- मिश्रित भाषा का प्रयोग :

भारत वर्ष में विभिन्न भाषाएँ बोलियाँ विकसित हो चुकी हैं । आज तो देश भर में सभी लोगों का एक दूसरे के साथ बड़ी सम्पर्क बनाये हुए है । राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि सांस्कृतिक परम्पराएँ धार्मिक संस्कार और भाषाओं और बोलियों के शब्दों का आदान प्रदान होना चाहिए । आज के लेखक भी इस दिशा में भी हाथ बटा रहे हैं । 'खंजन नयन' नामक उपन्यास में भी इस प्रकार का प्रयास किया गया है । फारसी, ब्रज, अवधी एवं अरबी भाषाओं के शब्द इस उपन्यास में मिलते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास 'खंजन नयन ' की भाषा सम्बन्धी मुख्य समस्या यह है कि यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐसे चरित्रों का चित्रण किया जाता है कि समसामयिक समाज से पूर्व के अथवा विशिष्ट गुणों के लिए समाज में प्रख्यात है - (जिसका प्रतीक प्रस्तुत उपन्यास 'खंजन नयन' का नायक सूरदास है) ऐसी स्थिति में उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप भाषा भी विशिष्ट गुण सम्पन्न और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से युक्त होनी चाहिए । ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा सांस्कृतिक चेतना का बोध कराने वाली, देशकालानुरूप होनी

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 78

अनिवार्य होती है । मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग भी चरित्र और देश-काल को ध्यान में रख कर ही करना होता है - - - अन्यथा भाषा में प्रामाण्य बोध उत्पन्न नहीं हो सकता । ऐतिहासिक उपन्यासों में भाषा वह शब्द चित्र है जिस के देखने मात्र से कोई विशिष्ट गुण सम्पन्न व्यक्ति या काल पाठकों के नेत्रों में घूमने लगता है । अतः यह कहना सर्वथा निश्चित है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को भाषा के सम्बन्ध में कुछ सीमाएँ हैं और उनके साथ ही एक विशिष्ट स्तर का सृजन के लिए मानसिक सन्तुलन की आवश्यकता बराबर बनी रहती है । समसामयिक विषय प्रतिपादन करने वाला उपन्यास भाषा की दृष्टि से मुक्त वातावरण में विचरण करता है, उसके सम्मुख अनन्त और मुक्त आकाश है, यद्यपि शब्दावली चुनने में अवश्य कठिनाई होती है । यद्यपि खंजन नयन में उपन्यासकार नागर जी ने तत्कालीन समाज और राजकरण का यदाकदा उल्लेख कर उपन्यास की ऐतिहासिकता को बनाये रखने में अपूर्व प्रतिभा का उपयोग किया है तथापि सूरदास के द्वारा विरचित ग्रन्थों के आधार पर ही उनके जीवन को रूपायित करने का बेजोड़ प्रयास किया जो अत्यधिक सफल हुआ है । अतः यह उपन्यास भी 'एकदानैमिषारण्ये'', मानस का हंस, 'चैतन्य महाप्रभु' की भांति सांस्कृतिक बोध कराने वाला ही उपन्यास अधिक कहा जायेगा । अतः प्रस्तुत उपन्यास में भाषा का स्तर भी सूरदास के मानसिक धरातल जैसा ही है । सूरदास बाबा निर्वाण के समय सोचने लगते हैं - 'वह श्याम जो सूरज के चित चढ़ा, सूर स्वामी सूरदास के चित चढ़ा, जिसे ललित भाव से भजा, उसे ही अब वृषभानुजा के नेह भरे नयनों से अपलक देखते हैं । श्याम उनसे एक रस हो गया है । इस जाना आवरण दोनों के बीच में है, मिश्री सी गोरी राधा कृष्ण कालिंदी के जल में घुल कर मिठास तो बन चुकी है पर अभी उसकी रेडियाँ दांतों में करकराती हैं देखो, कब आये श्याम कब मिसरी सी मधुर राधा का एक एक कण कृष्णमय हो जाये । सूर इस समय

सूर नहीं 'श्रोता' है । प्रिय मिलन की तैयारियों में दीर्घ जीवन का एक एक क्षण अर्पित किया है ।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में सूर के सभी विचार व्यक्तित्व के अनुरूप ही व्यक्त हुए हैं । यहाँ शैली जहाँ समास - बहुला है वहाँ 'सूर' के जीवन की गहन-आस्था भी व्यक्त करती है ।

अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नागर जी अपने ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक बोध उत्पन्न कराने वाले उपन्यासों का भाषा का एक विशिष्ट स्तर रखते हैं जो उपन्यासों को पात्रों का गरिमा, उनके सांस्कृतिक धरातल, उनके बौद्धिक तथा भावात्मक सौन्दर्य को विकीर्ण करने में सक्षम होती है ।

'खंजन नयन' की भाषा स्थान और पात्र को देखते हुए बदलती रहती है, खड़ा बोली, ब्रज और अवधी की नाव पर मथुरा से अजोध्या की ओर काशी की यात्रा नदी के बीच यात्रा तो है ही, वह एक भाषा - यात्रा भी है । 'आठ कोस पे पानी बदले साठ कोस पे बानी' की कहावत चरितार्थ होती है, बस एक बात जो समझ से बाहर है, वह यह है कि प्यार का बातें करते हुए सूरदास ब्रज भाषा में बोलते हैं - 'कृष्ण को सखा, माधव आदि नामों से सम्बोधित करते हैं, पर आवेश में यह सम्बोधन सर्वेश्वर या प्रभु में बदल जाता है और ब्रज का स्थान खड़ी बोली ले लेती है, नीचे दो उदाहरण दे रहा हूँ :-

'तेरा ब्याह नहीं हुआ रे ।'[2]
'एक बेर सगायी भाय, दुहाजू तिहाजू हतो --'[3]

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 232
2- - वही - पृ0- 8
3- - वही - वही

या, 'हाँ बाप ! तेरो मुंह ले जाएगा,' आदि[1]
और " सर्वेश्वर या तुमने कैसा लीला दिखलाय प्रभु, मैं तम्हारो देहरी पर अपना सिर फोड - फोड़ कर मर जाऊँगा - जो आचार्य जी का कुछ हो गया तो !.'[2]

यह सही है कि ब्रज भाषा प्यार का भाषा है, मधुर भाषा है, जहाँ गुस्सा भी बड़े प्यार से व्यक्त किया जाता है, पर बड़ी बोल गुस्से की भाषा नहीं है, न सर्वेश्वर गुस्से का प्रतीक । यह तो नागर जी ही जानते होंगे कि सम्बोधनों में ये परिवर्तन उन्होंने जान कर किए हैं, या अनायास हो ही गये । 'खंजन नयन' के पदों के विषय में यह दोषारोपण किया जाता है कि यह दूसरे कवियों के पदों के अनुवाद मात्र है । अगर पाठक बड़े ध्यान से देखें तो उनको यह दोषारोपण तर्क संगत प्रतीत नहीं होगा क्योंकि बड़े लोगों के लेखन में कई बार विभिन्न समानता पायी जाती है, लगता है कि किसी एक ने दूसरे का नकल की है, शायद एक ही भाव तरंग पर स्थित होने के कारण यह स्थिति उत्पन्न होती होगी, यदि सूरदास के पद --

'बंदों चरण कमल हरि राई
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै
अन्धे को सब कुछ दरसाई ।'[3]

को लें तो यह 'मूकं करोति वाचालम्' का अनुवाद मात्र मालूम होता है या

'जब मैं था तब हरि नहीं
अब हरि है मैं नाहि
प्रेम गली अति साँकरी
या में दुइ न समाहि ।'[4]

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0-59
2- - - वही - पृ0- 176
3- - - वही - पृ0- 38
4- - वही - पृ0 - 159

और " न होता मैं खुदा होता
खुदा होता न मैं होता
डुबाय मुझको होने ने
न होता मैं तो क्या होता

के बीच जो साम्य है वह सम्भवतः दो सशक्त कवियों के समान भावतरंगों पर स्थित होने के कारण उत्पन्न होता होगा, नागर जी ने इस स्थिति को 'सूरदास' के बचपन की स्मृतियों से जोड़ा है, जब 'सूरदास' के पिता किसी कवि में भागवत की कथा बाँचते समय 'मूकं करोति वाचालं' का अर्थ विस्तार से समझाया करते थे। 'सूरदास' के पद छाँटते समय नागर जी थोड़ी कोताही कर गए लगते हैं, 'सूर' के बहुत सशक्त और प्रचलित पदों का प्रयोग नागरजी ने क्यों नहीं किया -- इसका कोई तर्क समझ में नहीं आता।

अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नागर जी का अद्भुत विधान अत्यधिक चिन्तन और भावुकता के अवसाद का प्रतिफलन है। भावुकता के कारण ही उसमें स्वाभाविकता है। उनकी उपमानों में नवीनता, जीवन्तता और मौलिकता है। उपन्यासकार की भाषा में कुछ ऐसा अपनापन और घरेलूपन है कि वह पाठक के मन को अपनी ओर बरबस ही खींच लेता है। सभी भाषा सम्बन्धी दृष्टियों से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यासकार अमृतलाल नागर भाषा के डिक्टेटर हैं। उनकी भाषा कबीर, चन्दबरदाई, तुलसी, नज़ीर अकबराबादी और भारतेन्दु तथा प्रेमचन्द की भाँति समन्वयकारी नीति को लेकर चली है। हिन्दी भाषा का यह सौभाग्य रहा है कि भाषा के नाम पर अन्य विश्वासों को कभी किसी भी साहित्यकार ने प्रश्रय नहीं दिया। और इसी कारण हिन्दी भाषा ने सभी भाषाओं के शब्दों को

पचा कर अपने अभिव्यंजना शक्ति को अधिक चमत्कारिक और गुणकारी बना दिया है, नागर जी इस तथ्य से पूर्ण परिचित हैं । संस्कृत भाषा उन्हें रिक्त में मिली है, ब्रज भाषा में उनका शैशव और युवावस्था स्पंदित हुई है, अवधी लखनऊ निवास के कारण उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गई है । खड़ी बोली में उर्दू की चासनी घोलना उनका अपना वैशिष्ट्य है । और फिर उपन्यास के लिए तो सरल और घरेलू भाषा की आवश्यकता रहती भी है । यह समग्र भाषा और बोलियों के दर्शन उनके उपन्यासों में हो जाते हैं । इसलिए भाषा सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण विधायक है । लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से जहाँ उनकी भाषा में सर्जवता और लक्षणा तथा व्यंजना के दर्शन होते हैं, वहाँ रसों का भी उनके भाषा में सदा बसन्त रहता है, बसन्त की सौरभ भी अपने यौवन पर है । वाणी कलाकार के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है और आज्ञा प्राप्त करते ही भावानुरूप अभिव्यक्ति के लिए तत्पर रहती है । उनका शब्द कोष अक्षय और विशाल है । और इसी कारण शब्द कर्तव्य परायण सैनिक की भाँति कलाकार की ओर निहारते रहते हैं कि न जाने कब और किसको अपना कर्तव्य निभाने के लिए आज्ञा मिल जाए ।

(आ) कथोपकथन की समीक्षा :-

पात्रों के चरित्र - निर्माण में कथोपकथन का बहुत महत्व होता है । एक लेखक ने कथोपकथन की परिभाषा इस प्रकार दी है :-

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार वास्तविक जीवन की बातचीत की अनुरूपता ही कथोपकथन का मापदण्ड है । उपन्यास के पात्र मानव के प्रतिबिम्ब होते हैं, अतएव -

।-

अतएव उनकी बातचीत की कसौटी भी मानव की बातचीत ही होती है । किसी भी उपन्यास की सफलता के यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनके पात्रों की बातचीत स्वाभाविक तथा प्रसंगानुकूल हो । स्वाभाविकता से तात्पर्य यह है कि वह बोलने वाले पात्र के उपयुक्त हो और परिस्थिति विशेष में संगत तथा सहज प्रतीत हो । 'कथोपकथन' के इस अनुरोध की रक्षा करने के साथ ही साथ लेखक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कथोपकथन नीरस न हो जाये - उसमें पर्याप्त रमणीयता हो । परन्तु वास्तविकता और रमणीयता दोनों ऐसे विरोधी गुण हैं कि इनका साथ साथ निर्वाह कुशल कलाकार ही कर सकते हैं । यदि मनुष्य के साधारणतम दैनिक जीवन की बातचीत को ही अंकित कर दिया जाये तो उससे बढ़ कर वास्तविकता और कहाँ मिलेगी, परन्तु ऐसी बातचीत नितान्त नीरस और प्रभाव शून्य होगी, उसमें हमारा मन रम ही न सकेगा । इसके विपरीत यदि जान बूझ कर कथोपकथन को नाटकीयतापूर्ण प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया जायेगा तो उसमें कृत्रिमता आ जाने की बहुत सम्भावना रहेगी । ऐसे कृत्रिम कथोपकथनों में हमारा विश्वास कभी न टिक सकेगा और उसे हम केवल लेखक द्वारा गढ़ा हुआ शब्द - कौतुक ही समझेंगे इसलिए उपन्यासकार को बहुत सम्भल कर चलने की आवश्यकता होती है । दूसरी बात यह है कि लेखक को निरर्थक कथोपकथन से बचना चाहिए । कथोपकथन का उतना ही प्रयोग होना चाहिए जितने से कथा की प्रगति में अथवा चरित्र के विकास में सहायता मिले । जिस कथोपकथन से इन उद्देश्यों की पूर्ति न हो वह असम्भव तथा विशृंखल सा लगेगा । आदर्श कथोपकथन पात्रों के भावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों, तथा घटनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया दिखाने के साथ साथ कथा प्रवाह को भी आगे बढ़ाता जाता है । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कथोपकथन को मुख्यतः तीन उद्देश्यों से प्रयोग में लाया जाता है (क) कथानक का विकास करना (ख) पात्रों का व्याख्या करना और

(ग) लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना ।

इन दो आधारों को ध्यान में रखते हुए उपन्यास 'खंजन नयन' के कथोपकथनों का व्याख्या करेंगे -

नागर जी उपन्यासकार होने के साथ साथ एक सफल नाटक कार भी हैं, यही कारण है कि उनके उपन्यासों में कथोपकथनों का प्रयोग प्रायः सफलता पूर्वक किया गया है । वे अनेक भाषाओं, उनकी प्रकृति, अनेक प्रकार की बोलियों, उनकी ध्वनियों की संगीतात्मकता और लहजे आदि से पर्याप्त परिचित हैं, यही कारण है कि उन्होंने प्रायः कथोपकथन को सजीव एवं रोचक रूप में ही प्रस्तुत किया है ।

(क) कथानक का विकास करना :-

उपन्यास के अंगों में से कथानक एक महत्वपूर्ण अंग है । कथानक, कथा-वस्तु एवं उद्देश्य को प्रेषणीय बनाने के लिए कथोपकथन सब से अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । कथोपकथनों के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता लाता और उनके संगठन से कथानक का विस्तार करता है । कथोपकथन को प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र से सम्बन्धित होना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो कथानक की पारस्परिक क्रम बद्धता नष्ट हो जायेगी और उसकी विविध घटनाओं में किसी प्रकार के सामंजस्य के अभाव में असंगति जान पड़ने लगेगी किन्तु इस प्रकार की असंगति हमें 'खंजन नयन' उपन्यास में कहीं भी देखने को नहीं मिलती, कथोपकथनों का प्रयोग कथानक के विकास के लिए किया गया है ऐसा कई जगहों पर जान पड़ता है । जब सूरदास जी कन्नो को साथ लिए हुए अयोध्या जी की ओर चल देते हैं तो रास्ते में राह भटकने के कारण वह एक पठानी के गाँव में चले जाते हैं, वे अपने आपको

कट्टर मुसलमान समझते थे - इसी कारण उन्होंने सूर और कन्तो के जोड़े को एक काफिर अन्धा जोड़ा समझ कर पकड़ लिया -

'नूर खाँ, वो देखो, एक अन्धा जोड़ा जा रहा है । काफिर है । इधर से हैं भी नहीं । पकड़ लो नामुरादों को । काम लो इनसे ।' बुदबुदो मौलवी छड़ी के सहारे खड़े होकर उस ओर देखते रहे और फिर वहीं से खड़े खड़े ही कड़क कर बोले 'दे सालों को एक - एक पोलकस कस के । अहदी कहीं के साले काम चोर । इन्हीं की वजह से तो यह मुल्क तबाह हुआ है ।'[1]

यह कथोपकथन कथानक के विकास के लिए प्रयोग किए गए हैं, क्योंकि सूरे को कोल्हू का बैल बनना पड़ता है और कन्तो की मृत्यु हो जाती है । कन्तो के मरने के बाद सूरदास जी बहुत दुःखी हो जाते हैं, वे सोचते हैं कौन था प्रिया ? भुलावा देकर कहाँ से कहाँ ले आई ?---'[2]

इसलिए कन्तो को कथानक से हटा कर लेखक ने सूरदास के साथ न्याय ही किया है । अगर कन्तो कथानक से न हटती तो सूरदास का वहाँ पहुँचना कठिन होता जहाँ कि वे निर्वाण के समय पहुँचे होते हैं । इसी प्रकार --

'मेरे पिता भी संगीत विद्या के बड़े उपासक थे, श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने में प्रसिद्धि पाई थी, तुम्हें याद है ? पूरी तो नहीं फिर भी अनेक अंगों का विभिन्न न्यासों का स्मरण है ।

'हूँ, भूमि उर्वरा है, केवल बीजारोपण नहीं हुआ । --- आएगा । इसी छौंकरे तले आकर विराजेगा तुझे अन्तर्दृष्टि देने वाला । तेरी आसक्ति को व्यसन बना देने वाला ।'[3]

इन कथोपकथनों से पाठक का ध्यान उस ओर चला जाता है कि कोई भी कमी जो सूरदास में है उसे पूरा करने के लिए किसी न किसी को लेखक

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 123
2- - वही - पृ0- 126
3- वही - पृ0- 89

प्रकाश पाना चाहते हैं और लेखक को एक ओर संदर्भ जोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि उसका परिचय पाठकों को पहले ही मिला होता है, जिज्ञासा एवं उत्सुकता का वे उस महापुरुष का इन्तिज़ार ही करते रहते हैं जो कि सूरदास को अन्तर्दृष्टि देने वाले होते हैं और इससे कथानक में भी विकास होता है ।

(ख) पात्रों की व्याख्या करना :-

उपन्यास में कथोपकथन का सम्बन्ध कथानक और पात्रों से समान रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी पात्रों से विशेष होता है । पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से जो विचार प्रकट होते हैं वे ही पाठक को उनके प्रति नैकट्य का अनुभव करने देते हैं । कथोपकथन के द्वारा उपन्यासकार पाठकों को अपने पात्रों के विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व सम्बन्धी इतना प्रत्यक्ष बोध कराता है जो अन्य किसी माध्यम से सम्भव नहीं है । कथोपकथन के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति के चरित्रों की व्याख्या करता है और उन्हें विकास की ओर अग्रसर करता है । कभी पात्र के बारे में जो बात लेखक स्वयं नहीं बता सकता वह पात्र के द्वारा ही कहलवाता है, अर्थात लेखक को कथोपकथन का ही सहारा लेना पड़ता है । लेखक कथोपकथन के माध्यम से ही पात्र की सामाजिकता, धार्मिकता, नैतिकता, अनैतिकता या मानसिकता को सफल अभिव्यक्ति दे सकता है । हमें यही देखना है कि 'खंजन नयन' नामक उपन्यास में लेखक कथोपकथन के माध्यम से कहाँ तक पाठकों को अपने पात्रों तक पहुँचाने में सफल होता है । नागर जी ने पात्रों की व्याख्या करने के लिए ऐसे कथोपकथनों का प्रयोग किया है कि पाठक आसानी से पात्र के बारे में सब कुछ जान लेता है । उन्होंने स्वयं सूरदास से प्रस्तुत उपन्यास में कहलवाया है - 'मेरा जन्म गोवर्धन के निकट परासौली ग्राम में हुआ था किन्तु चार वर्ष की आयु में मुर ग्राम के पास सीही चला गया । पिता सारस्वत, अपने क्षेत्र में भागवत महाराज के नाम

विख्यात थे । एक समय घर में थोड़ा वैभव भी था, किन्तु नौ वर्ष पहले जब सिकन्दर सुल्तान अपना फौजी लूट के लिए दिल्ली से निकला था तब हमारे ग्राम में भी तबाही आई थी आधे से अधिक घर तोड़ डाला गया था ।

'क्या नाम है ?'

'सूर्यनाद ।'

तुम्हें अपना जन्म संवत् याद है पुत्र ?'

'विक्रम संवत् पैंतीस, बैसाख सुदी पाँच ।'[1]

ऐसे कथोपकथनों द्वारा पाठकों को, पात्र को अच्छी तरह से जानने में सहायता होती है, चाहे वह ऐतिहासिक तथ्य हो या न हो लेकिन औपन्यासिक तथ्य अवश्य है और एक पाठक को उसी चश्मे से इसे देखना चाहिए ।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि कथोपकथन के द्वारा उपन्यासकार अमृतलाल नागर अपनी कृति 'खंजन नयन' के चरित्रों की व्याख्या कर सका है और उन्हें विकास की ओर बढ़ेब अग्रसर कर पाया है ।

(ग) लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना :

कथोपकथन लेखक के उद्देश्य को प्रकट और स्पष्ट करता है । बहुत से स्थलों पर लेखक अपनी बात को पात्रों के माध्यम से कहलाना चाहता है, वहाँ कथोपकथन ही उसके सहायक होते हैं । कथोपकथन के माध्यम से उपन्यास की तह तक पहुँचा जा सकता है अर्थात् उपन्यास की आत्मा तक पहुँचने में कथोपकथन भी सहायक सिद्ध होता है । आत्मा से मेरा तात्पर्य उद्देश्य से है । उद्देश्य के बढ़ेब सम्प्रेषण में कथोपकथन की शिल्पगत विशेषताएँ बहुत ही महत्व पूर्ण होनी चाहिए ।

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 14

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'खंजन नयन' नागर जी की सूर बाबा के प्रति श्रद्धा का प्रमाण है। कथोपकथनों के माध्यम से लेखक अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। उदाहरण के लिए प्रस्तुत कथोपकथन देखिए :-

'सूरदास जी इस समय आपके चित्त की वृत्ति कहाँ है। गोसाईं जी ने पूछा।
'चित्त ? - - (गाने लगे) बलि बलि बलि है, कुँवरि राधिका नन्द - सुवन जासौं रति मानो।' कंठ थक गया। जिसने सहस्त्रावधि पद रचे हों, पढ़ियों, पहरों गाया हो वह बस एक पंक्ति गा कर ही हाँफ गया। समय है हरि। भाव न थकें काया तो जर्जर है ही।
'एक प्रश्न और पूछूँ सूरदास जी, थक तो नहीं ?'
'जिन्हें सचल श्रीकृष्ण माना उनके पूछने से थकूँगा भला ?'
'आपके नेत्रों की वृत्ति इस समय कहाँ है ?'
सूरदास जी ने तानपूरा मँगवाया, एक घूँट जल गले में डाला। तार सुर में झनझना उठे। सूर ने धुन कर गाना आरम्भ किया :-
'खंजन नयन' रूप रस माते।' सूर में बसी राधा के नेत्रों की वृत्ति खंजन पक्षी के नेत्रों के समानही चंचल हो रही है। गायक का स्वर खंजन के चंचल नेत्रों की तूलिका - सा चित्रित कर रहा है। सूर की आँखे भले ही अन्धी हों पर अब वे राधा रानी के नयन हैं, अतिशय चारु और विमल। हाँ, प्रिय आगमन की प्रतीक्षा में पलक पिंजरे में इधर से उधर बेकली से चक्कर लगा रहे हैं, बड़े चंचल हैं। तेरे नैन बसे कहाँ हैं सखी ? - - - बसे तो पिया के पास हैं और यहाँ भी। यहाँ इस नाते से हैं कि प्रिय अभी आने वाले हैं।'

प्रस्तुत कथोपकथनों से ही लेखक का उद्देश्य स्पष्ट होते हुए दिखता है यहाँ पर लेखक ने कथोपकथनों का वर्णनात्मक, प्रश्नोत्तरात्मक आदि शैलियों को

छोड़ कर व्याख्यात्मक शैली को अपनाया है, जिससे कि वह अपनी बात को अधिक स्पष्ट कर पाये हैं । लेखक विविध मत मतान्तरों से गुज़रते हुए भी अन्तिम चरण में सगुण भक्ति पद्धति में भी प्रेमाभक्ति का निर्वाह करते हैं ।
हवेली रगड़ कर अपने श्याम का ध्यान करता है कि नहीं अधूरा ध्यान ।'
सूरज चौंक गया, पूछा : 'अधूरा कैसे प्रभु ?'
'गोरे पूर्ण राधे बिना श्याम आधे हैं दोनों मिल कर अखण्ड रसमय तत्व के रूप में नित्य प्रतिष्ठित है ।'[1]

प्रस्तुत कथोपकथन में नागर जी ने प्रश्नोत्तरी शैली को अपनाया है और जब दाऊ बाबा सूर से यह कहते हैं कि राधा बिना श्याम अधूरे हैं तो पाठक स्वयमेव समझ जाते हैं कि लेखक उनको उद्देश्य की ओर ले जा रहा है । इस प्रकार ऊपर दिये हुए कथोपकथनों से उद्देश्य को स्पष्ट किया है ।

उपन्यासकार अपने इच्छित वातावरण की सृष्टि कर सकता है जिस के लिए वह अन्य किसी माध्यम का आश्रय नहीं लेना चाहता । नागर जी के पात्र जहाँ एक ओर तर्क करते हैं वहीं दूसरी ओर हास्य व्यंग्य के छींटे उछाल कर पाठक का मनोरंजन करते हैं ।

निष्कर्षतः कथोपकथन की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि नवीनता रोचकता, प्रवाह पूर्णतः जिज्ञासा मनोवैज्ञानिकता का सफल निर्वाह इस उपन्यास में हुआ है । नागर जी के कथोपकथनों में सहजता सरलता तथा वेग है । उनके कथोपकथनों में कहीं व्यंजना है तो कहीं ध्वनि, कहीं हास्य रस तो कहीं दार्शनिक गम्भीरता । उनके कथोपकथनों में पात्रानुकूल शैली और ग्रामीण भाषाओं का यथास्थान प्रयोग प्रसंगों को और भी आकर्षक और प्रभावोत्पादक बना देता है । उनके संवाद चरित्रों को उभारते ही हैं साथ ही घटनाओं का विकास भी करते हैं ।

1- 'खंजन नयन' अमृतलाल नागर पृ0- 86

उनके कथोपकथनों में जितनी तीव्रता, सरसता, भावुकता तथा स्वाभाविकता है उतने अन्य उपन्यासकारों में नहीं । इस प्रकार नागरजी ने इस उपन्यास में कथोपकथनों के माध्यम का सफल और पूर्ण उपयोग किया है । इस प्रकार कथोपकथनों की विशेषताओं के कारण यह उपन्यास सजीव एवं रोचक बन गया है ।

- - - - - - - - - -